वज्रदन्त बारामासा

यति नैनसुखदास जी द्वारा विक्रम संवत् १९२७ में विरचित वज्रदंत चक्रवर्ती का यह अत्यन्त ही सुन्दर, वैराग्य रस से सराबोर एवं भावनापूर्ण बारहमासा है।

कवि ने बारह भावना, राजुल बारहमासा एवं अनेक भजन आदि विविध रचनाओं का निर्माण करके जैन साहित्य को समृद्ध किया है। बारहमासा प्रारम्भ करते हुए उन्होंने बहुत सुन्दर रूपक खींचा है कि इन्द्र के समान भोगों के धनी वज्रदन्त चक्रवर्ती बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं के बीच में अपनी सभा लगाकर बैठे हुए थे, उस समय माली के द्वारा लाए हुए कमल में मृत भौंरे को देखकर भव्य होनहार युक्त, उनके भीतर वैराग्य धारा उल्लसित हुई कि 'अहो ! मात्र एक इंद्रिय के वशीभूत इस भौंरे की यह दुर्दशा हुई तो मैं तो विषय-कषायों के जाल में पड़ा हूँ, यदि अब भी अपना हित नहीं करूँगा तो न जाने कौन सी गति में जाकर पड़ जाऊँगा |' उनके चित्त में आत्म-कल्याण की वांछा ने जोर पकड़ा और उन्होंने जैन दीक्षा अंगीकार करने की मन में ठान ली।

अपने एक हजार पुत्रों को बुलाकर उन्हें अपने वैराग्य भाव से अवगत कराके चक्रवर्ती राज्य-भार को संभलवाने की चेष्टा में रत हुए, परन्तु संसार-शरीर-भोगों से उदासीनता युक्त वे सारे पुत्र आखिर वैराग्यवन्त चक्रवर्ती के ही पुत्र ठहरे , पिता के द्वारा उपभुक्त राज्य-लक्ष्मी रूपी वमन को वे कैसे अंगीकार कर सकते थे, सो सबने ही एक स्वर से उसका निषेध किया कि 'जगत के जिस जंजाल को आप बुरा जानकर छोड़ रहे हैं हमें उसमें ही फंसा रहे हैं, हम कदापि यह स्वीकार न करेंगे और आपके ही साथ मुनिव्रत अंगीकार कर पांच महाव्रतों को धारण करेंगे।'

अब यहाँ से बारह मास प्रारम्भ होते हैं। आसाढ़ से लेकर दस मास पर्यन्त पिता-पुत्रों का संवाद है। आसाढ़ के मास से पिता ने पुत्रों को जो समझाना प्रारम्भ किया कि चैत का महिना आ गया, पर पुत्रों की निरन्तर जिनदीक्षा को अंगीकार कर लेने की दृढ़ता ही सामने आई। निर्ग्रन्थ मार्ग के उपसर्ग एवं परिषहों आदि के अनेक कष्ट, मुनिव्रत व संयम पालन की कठिनाईयाँ, भोगों के त्याग की दुष्करता, विषय-कषाय व काम भाव की जीव में प्रचुरता, भावों की स्थिरता का अभाव एवं तप धारण की दुर्द्धरता आदि-आदि बताकर पिता ने हर मास में पुत्रों को राजनीति के अनुसार राज्य कार्य करके अपने कुल की ही रीति पर चलने की ओर प्रेरित किया, परन्तु संसार-शरीर-भोगों से कंपायमान चित्त वालें, उपसर्ग-परिषहो में मन की दृढ़ता से युक्त, आत्म-अनुभव की महिमा से ओतप्रोत, मुनि दीक्षा धारण करने की धन्यता के भाव सहित और बंध के अभाव के उद्यम के प्रमोद वाले उन पुत्रों का हर मास में यही उत्तर आया कि 'जो आपकी समझ है वही हमारी भी समझ है, जो भौंरा 'कर के कंगनवत्' आपको संसार की अनित्यता दिखा गया है वही हमें भी दिखा गया है, हमें आप राज्य-पद क्यों दे रहे हैं?

पिता द्वारा वनवास के दुःखों का भय दिये जाने पर तो पुत्रों ने संसार की चार गति और चौरासी लाख योनियों के, और उनमें भी नरकों व तिर्यंचों के अनन्तानन्त दुःखों को याद कर लिया कि 'परवश इतने दुःख अनन्त बार सहे, उनके सामने हे पिता ! ये दुःख तो क्या दुःख हैं?'; फिर उनके द्वारा अपनी विशाल सम्पत्ति को अंगीकार करके भोगने का लोभ प्रदान करने पर पुत्रों ने भोगों को अनन्त धिक्कारता दी कि 'हे कृपानिधान ! आपके प्रसाद से अमर्यादित भोग हमने भोगे, परन्तु अब हमारे भीतर भोगों की चाह मात्र भी शेष नहीं है। ये भोग ही वे वस्तु हैं जिनके चक्र में फंसकर यह जीव मुक्ति की अनुपम राह को भूल जाता है|' चैत मास के दसवें महीने में पहुँचने पर पिता ने जब वसंत ऋतु में कामदेव के द्वारा ज्ञान के परम खज़ाने को हर लेने पर दुर्गति गमन की बात कही तब पुत्रों ने उसमें भी अपनी दृढ़ता दिखा कर कहा कि 'वसंत ऋतु में तो हम उस श्मशान भूमि में परिषह सहेंगे जहाँ हरितकाय का अंकुर तक नहीं होता, चारों ओर दिन-रात धूल ही धूल उड़ती है और वहाँ प्रचण्ड भूत-प्रेतों के शब्द सुनकर काम भाग जाता है।'

अब यहाँ पर आकर पिता के वक्तव्य पुत्रों के द्वारा असहनीय हो गये और वे उनसे अरदास कर उठे कि 'हे प्रभु ! अब आगे हमसे कुछ और मत कहना क्योंकि इन संसार-शरीर-भोगों से हमारा मन कांप चुका है, हम ये राज्य-पद किसी भी कीमत पर अंगीकार करने वाले नहीं हैं।'

ग्यारहवाँ वैशाख का मास आने पर कविवर वर्णन करते हैं कि 'पुत्रों की अरदास सुनकर चक्रवर्ती के मन में विश्वास पैदा हो गया कि अब बोलने को कोई स्थान नहीं बचा है, मैं कुछ और कहता हूँ और ये पुत्र कुछ और ही कहे जा रहे हैं।' पुत्रों से वे बोले कि 'अब मैं कुछ और नहीं कहूँगा, तुम इस जगत की रीति का पालन करो और एक बार हमसे तो राज्य लेकर फिर चाहे जिसको भी दे दो।' फिर छह मास के एक पोते का अभिषेक करके उसे राजा बनाकर पिता के साथ सब पुत्रों ने जगत के जंजाल से निकलकर वन के मार्ग को ग्रहण किया और केवल वे एक हजार बड़भागी पुत्र ही नहीं वरन् उनके साथ बत्तीस हजार में से तीस हजार मुकुटबद्ध राजा और छियानवे हजार में से साठ हजार रानियाँ भी संसार को त्याग कर चल दीं। सबने ही भोगों की ममता को छोड़ दिया और समता भाव धारण कर तीनों लोकों के जीवों से विनती की कि 'हमने तो अर्हंत, सिद्ध और साधु की शरण ग्रहण करके सबसे वैर छोड़ दिया है, आप सब भी हमसे वैर को छोड़कर हमको क्षमा करना, आज हम जैनेश्वरी दिगंबर दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं और सर्वज्ञ भगवान के मत में हमने अपना मन लगा लिया है' -ऐसा कहकर वज्रदन्त चक्रवर्ती सहित उन इक्यानवें हजार जीवों ने पिहितास्रव गुरु के समीप केशों का लोंच करके जैन दीक्षा ग्रहण की और निर्विकल्प होकर ध्यान में दृढ़ता धारण की।

अंतिम ज्येष्ठ मास के ग्रीष्म काल में पहितास्रव गुरु ने आतापन योग धारण करके शुक्ल ध्यान के द्वारा तीनों लोकों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान केवलज्ञान को प्रकट किया और वे वज्रदन्त मुनीश भी स्व-पर कल्याण करके आवागमन को तिलांजलि देकर कालान्तर में शिवपुर (मोक्ष) गए और निरंजन व निराकार हो गए। अन्य भी जिनदीक्षा ग्रहण करने वाले सब ही जीवों की शुभ गति हुई। जो भी जीव जिनेन्द्र भगवान की शरण ग्रहण करते हैं उनके पुरुषार्थ की सिद्धि के उपाय से उत्कृष्ट प्रयोजन 'मोक्ष' की सिद्धि हो जाती है। कविवर नैनानन्द जी कहते हैं कि 'इस बारहमासे को पढ़कर जो कोई जीव उल्लसित चित्त से इसकी भावना भाता है उसके विघ्न नष्ट होकर नित्यप्रति नवीन मंगल होते हैं और वह सुर-नर के सुखों को भोगकर उत्तम मोक्ष को पा लेता है।' वज्रदन्त चक्रवर्ती के वृत्तान्त को पूर्ण करते हुए कवि नैनसुखदास जी के नयनों में आनंद भर रहा है और अंत में अत्यंत लघुता प्रदर्शित करते हुए उन्होंने अपनी बाल बुद्धि दर्शाकर ज्ञानी जीवों से इस बारहमासे को शुद्ध करने की और अपने दोषों पर रोष न करने की प्रार्थना की है।

(सवैया)

वन्दू मैं जिनन्द परमानन्द के कंद,

जगवन्द विमलेन्दु जड़तातप हरन कूं।

इन्द्र धरणेन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र जाहि,

सेवैं राव-रंक भव सागर तरन कूं।

निर्बन्ध निर्द्वन्द्व दीनबन्धु दयासिन्धु,

करैं उपदेश परमारथ करन हूं ।

गावैं नैनसुखदास वज्रदन्त बारहमास,

मेटो भगवन्त मेरे जनम-मरन कूं।।

अर्थः- जो परम आनन्द के पिण्ड हैं, जगत से वंदनीय हैं, जो जड़ता रूपी गर्मी को हरने के लिए निर्मल चन्द्रमा हैं, संसार समुद्र से तिरने के लिए- इन्द्र, धरणेन्द्र, गौतमादि गणधर और राजा हो चाहे रंक हो, सब ही जिनकी सेवा करते हैं, जो बंध रहित हैं, राग-द्वेष के द्वन्द्व रहित हैं, दीनजनों के बंधु हैं, दया के सिन्धु हैं और भव्यों को उनके मोक्ष रूपी उत्कृष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए उपदेश करते हैं, उन जिनेन्द्र की वन्दना करके नैनसुखदास जी वज्रदंत चक्रवर्ती का बारहमासा रच रहे हैं और प्रभु के चरणों में उनकी यही विनय है कि हे भगवान ! मेरे जन्म-मरण को मिटा दो।

(दोहा)

वज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय।

कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय।।

अर्थः- हे भव्यों ! जो बारह भावनाओं को भाकर, अपने कर्मों को काटकर मोक्ष गए उन वज्रदंत चक्रवर्ती की कथा तुम मन लगाकर सुनो।

(सवैया)

बैठे वज्रदन्त आय आपनी सभा लगाय,

ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं।

इन्द्र के से भोग सार रानी छ्यानवे हजार,

पुत्र एक सहस्त्र महान गुणागार हैं।

जाके पुण्य प्रचण्ड से नये हैं बलवंत शत्रु,

हाथ जोड़ मान छोड़ सेवैं दरबार हैं।

ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली तामें,

देखो अलि अम्बुज मरण भयकार हैं ।।

अर्थः- वजदंत चक्रवर्ती राजदरबार में आकर अपनी सभा लगाकर विराजमान हैं, उनके पास ही बत्तीस हजार (मुकुटबद्ध) राजा बैठे हुए हैं। चक्रवर्ती के इन्द्र के समान सारभूत भोग हैं, छियानवे हजार रानियां हैं और गुणों के समूह एक हजार पुत्र हैं। उनके प्रचण्ड पुण्य से बलवान शत्रु भी उनके सामने झुक गए हैं और हाथ जोड़कर मान छोड़कर वे उनके दरबार का सेवन कर रहे हैं ऐसा समय पाकर माली कमल की एक डाली लाता है और उसमें वे चक्रवर्ती मरण से भयभीत करने वाले एक भौंरे को देखते हैं।

(सवैया)

अहो! यह भोग महा पाप को संयोग देखो,

डाली में कमल तामें भौंरा प्राण हरे है।

नासिका के हेतु भयो भोग में अचेत सारी,

रैन के कलाप में विलाप इन करे है।

हम तो हैं पांचों ही के भोगी भये जोगी नांहि,

विषय-कषायनि के जाल मांहि परे हैं।

जो न अब हित करूँ जाने कौन गति परुँ,

सुतन बुलाय के यों वच अनुसरे हैं।।

अर्थः- चक्रवर्ती विचारते हैं कि ‘अहो ! देखो ! ये भोग कैसे महा पाप के संयोग रूप हैं कि डाली के कमल में इस भौंरे ने घ्राण इन्द्रिय के वशीभूत हो भोगों में अचेत होकर सारी रात के समूह में विलाप करके अपने प्राणों को हर लिया। केवल एक इन्द्रिय के वशीभूत इसकी यह दशा है तो मैं तो पांचों ही इन्द्रियों के विषयों का भोगी हैं, योगी नहीं हुआ हूँ और विषय-कषायों के जाल में ही पड़ा हूँ। यदि अभी भी अपना हित नहीं करूंगा तो न जाने कौन सी गति में जाकर पड़ जाऊंगा’ - ऐसा विचार करके पुत्रों को बुलाकर उन्होंने निम्नोक्त वचन कहे।

(सवैया)

अहो सुत! जग रीति देख के हमारी नीति,

भई है उदास बनोवास अनुसरेंगे।

राजभार शीस धरो परजा का हित करो,

हम कर्म शत्रुन की फौजन सूं लरेंगे।

सुनत वचन तब कहत कुमार सब,

हम तो उगाल कूं न अंगीकार करेंगे।

आप बुरो जान छोड़ो हमें जगजाल बोड़ो,

तुमरे ही संग पंच महाव्रत धरेंगे ।।

अर्थः- 'अहो पुत्रों ! इस संसार की रीति देखकर हमारी नीति उदास हो गई है, अब तो हम वनवास का ही अनुसरण करेंगे। तुम तो इस राज्य के भार को शीस पर धारण करके प्रजा का हित करो और हम कर्म शत्रुओं की फौज से लड़ाई करेंगे।’ पिता के ऐसे वचन सुनकर सारे कुमार कहने लगे कि ‘हम तो आपके उगाल को अंगीकार नहीं करेंगे, जिस जगत के जाल को आप बुरा जानकर छोड़ रहे हैं उसी में हमें फंसा रहे हैं, हमें यह स्वीकार नहीं हैं, हम तो आप ही के साथ पांच महाव्रतों को धारण करेंगे।’

पहला आसाढ़-मास

(चौपाई)

सुत असाढ़ आयो पावस काल ।

सिर पर गरजत यम विकराल ।

लेहु राज सुख करहु विनीत ।

हम वन जांय बड़न की रीति ।।

अर्थः- आसाढ़ के महिने में बरसात का समय आने पर ऐसे घनघोर बादल गरजते हैं मानों सिर पर विकराल यम ही गरज रहा हो, अतः हे विनीत पुत्रों ! तुम तो इस राज्य को लेकर सुखपूर्वक रहो, हम वन को जाते हैं और बड़ों की ऐसी रीति ही है कि वे इसी प्रकार छोटों को राज्य संभलवाके दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

(गीता छंद)

जांय तप के हेत वन को, भोग तज संजम धरैं ।

तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हों, संसार सागर से तरें ।

ये ही हमारे मन बसी, तुम रहो धीरज धार के ।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।।

अर्थः- हम तप के लिए वन को जा रहे हैं जहाँ भोगों का त्याग करके संयम को धारण करेंगे और अन्तरंग एवं बहिरंग समस्त परिग्रह को छोड़ निर्ग्रन्थ होकर संसार समुद्र से तिर जाएंगे। हमारे मन में तो यही बात बस गई है, तुम यहाँ पर धैर्य धारण करके रहो और राजनीति का विचार करके राज्य-काज करो, यही हमारे कुल की रीति है। इसी का तुम अनुसरण करो।

(चौपाई)

पिता राज तुम कीनो वौन।

ताहि ग्रहण हम समरथ हौं न।

यह भौंरा भोगन की व्यथा।

प्रकट करत कर कंगन यथा ।।

अर्थः- हे पिता ! आपने तो राज्य का वमन कर दिया है, उस वमन को ग्रहण करने में हम समर्थ न हो सकेंगे और फिर यह भौरा, भोगों की व्यथा को 'कर के कंगन' के समान प्रकट कह तो रहा है।

(गीता छंद)

यथा कर का कांगना, सन्मुख प्रकट नजरां परे।

त्यों ही पिता भौंरा निरखि, भव भोग से मन थरहरे।

तुमने तो वन के वास ही को, सुक्ख अंगीकृत किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।।

अर्थः- जिस प्रकार कर का कंगन नजरों के सामने स्पष्ट ही दिखाई देता है उसी प्रकार हे तात ! इस भौंरे को देखकर हमारा मन संसार और भोगों से थरथरा रहा है। आपने तो वन के निवास ही को सुख रूप से अंगीकार किया है सो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हैं।

दूसरा श्रावण-मास

(चौपाई)

सावन पुत्र कठिन बनवास।

जल थल शीत पवन के त्रास।

जो नहिं पले साधु आचार ।

तो मुनि भेष लजावें सार ।।

अर्थः- हे पुत्रों ! जिसमें सारी पृथ्वी जलमय हो जाती है और शीतल पवन का बहुत त्रास भोगना पड़ता है ऐसे सात में वनवास कठिन होता है और ऐसे में यदि साधु के आचार (दिगम्बर मुनि की आगमोक्त चर्या) का पालन न हो पाए तो लोकों में सार रूप यह दिगम्बर मुनि का वेष लजाया जाता है।

(गीता छंद)

लाजे श्री मुनि वेष तातैं, देह का साधन करो।

सम्यक्त्व युत व्रत पंच में तुम, देशव्रत मन में धरो।

हिंसा असत् चोरी परिग्रह, अब्रह्मचर्य सुटार के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।।

अर्थः- क्योंकि साधु का आचार नहीं पलने पर मुनिवेष का अपयश होता है इसलिए तुम देह की संभाल करो, सम्यक्त्व युक्त अहिंसादि पाँच व्रतों में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह पापों को टालकर महाव्रतों के स्थान पर देशव्रत की ही धारणा मन में धारण करो और राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

पिता अंग यह हमरो नाहिं।

भूख प्यास पुद्गल परछाहिं।

पाय परीषह कबहुँ न भजैं।

धर संन्यास मरण तन तजैं ।।

अर्थः- हे पिता ! यह शरीर हमारा नहीं है और भूख-प्यास तो पुदगल की छाया है, परिषहों को पाकर हम कभी भी भागेंगे नहीं और संन्यासमरण धारण करके इस देह को छोड़ देंगे।

(गीता छंद)

संन्यास धर तन कूं तजें, नहिं दंशमंशक से डरैं।

रहें नग्न तन वन खंड में, जहाँ मेघ मूसल जल परैं।

तुम धन्य हो बड़भाग तज के, राज तप उद्यम किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।।

अर्थः- हम तन को संन्यास धारण-करके तज देंगे और मच्छरों के काटने (दंशमशक परीषह) से डरेंगे नहीं, वनखण्ड में नग्न तन रहेंगे जहाँ मेघों का मूसलाधार जल शरीर पर पड़ेगा। हे बड़भागी पिता ! आप धन्य हैं जो राज्य को छोड़कर तप का उद्यम कर रहे हैं परन्तु जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हो |

तीसरा भाद्रपद-मास

(चौपाई)

भादौ में सुत उपजे रोग।

आवैं याद महल के भोग।

जो प्रमाद वश आस न टले।

तो न दयाव्रत तुमसे पले ।।

अर्थः- हे पुत्रों ! जब भादौ के महिने में शरीर में रोग पैदा हो जाएंगे तब महल के भोग तुम्हें याद आएंगे और प्रमाद के वश यदि भोगों की आशा नहीं टलेगी तो फिर तुमसे दयाव्रत का पालन नहीं हो सकेगा।

(गीता छंद)

जब दयाव्रत नहिं पले तब, उपहास जग में विस्तरे ।

अर्हत अरु निर्ग्रन्थ की कहो, कौन फिर सरधा करे ।

तातें करो मुनि दान पूजा, राज काज संभाल के ।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।।

अर्थः- दयाव्रत का जब पालन नहीं हो सकेगा तो जगत में उपहास होगा और फिर बताओ कि वीतराग अर्हत देव और निर्ग्रन्थ गुरु की कौन श्रद्धा करेगा इसलिए तुम राज्य का काज संभालके श्रावक के मुख्य कर्तव्य पूजा और मुनियों को आहार-दान ही करो और राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

हम तजि भोग चलेंगे साथ।

मिटें रोग भव भव के तात्।

समता मन्दिर में पग धरैं।

अनुभव अमृत सेवन करैं ।।

अर्थः- हे तात ! हम भोगों को तजके आपके साथ ही वन को चलेंगे जिससे हमारे भव-भव के रोग मिट जाएंगे, समता मन्दिर में हम प्रवेश करेंगे और आत्म-अनुभव रूपी अमृत का सेवन करेंगे।

(गीता छंद)

करैं अनुभव पान आतम, ध्यान वीणा कर धरैं।

आलाप मेघ मल्हार सो हं, सप्त भंगी स्वर भरैं।

धृग्-धृग् पखावज मोग कूं, सन्तोष मन में कर लिया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।।

अर्थः- अनुभव रस का पान करके हम आत्म-ध्यान रूपी वीणा हाथ में लेंगे, मेघमल्हार के राग में सो हं का गीत गाएंगे और । उसमें सात नयों की सप्तभंगी के स्वर भरेंगे, पखावज बाजे की धृग-धृग ध्वनि यह द्योतित करेगी कि भोगों को धिक्कार हो ! धिक्कार हो ! अब भोग नहीं चाहिए, उनसे हमने मन में संतोष धारण कर लिया है और आपकी जो समझ है सो ही हमारी । भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हैं।

चौथा असौज-मास

(चौपाई)

आसुज भोग तजे नहिं जांय।

भोगी जीवन को डसि खांय।

मोह लहर जिय की सुधि हरे।

ग्यारह गुणथानक चढ़ि गिरे।।

अर्थः- असौज में तुमसे भोग छोड़े नहीं जाएंगे, ये भोग भोगी जीवों को सर्प के समान डसकर खा जाते हैं और उससे मोह रूपी विष की जो तन में लहरें चलती हैं वह हृदय की सुध को हर लेती है और ग्यारहवें गुणस्थान पर भी चढ़कर वहाँ से मोह की लहरों के वश जीव नीचे गिर जाता है।

(गीता छंद)

गिरे थानक ग्यारवें से, आय मिथ्या भू परे।

बिन भाव की थिरता जगत में, चतुर्गति के दुःख भरे।

रहें द्रव्यलिंगी जगत में, बिन ज्ञान पौरुष हार के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।।

अर्थः- ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर जीव पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व की भूमि पर आकर पड़ जाता है, बिना आत्मज्ञान के पुरुषार्थ को हारकर द्रव्यलिंगी ही रह जाता है और भाव की स्थिरता के बिना संसार में चारों गतियों के दुःखों का भोगता है अतः तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

विषय विडार पिता तन कसैं।

गिर कन्दर निर्जन वन बसैं।

महामंत्र को लखि परभाव।

भोग भुजंग न घालें घाव ।।

अर्थ:- हे पिताजी ! विषयों का त्याग करके कायक्लेश के द्वारा तन कसकर हम पहाड़ों की गुफा अथवा निर्जन वन में निवास करेंगे और णमोकार मंत्र का प्रभाव देखकर भोग रूपी सांप हमें डसकर घाव नहीं करेंगे।

(गीता छंद)

घालें न भोग भुजंग तब क्यों, मोह की लहरां चढ़ैं।

परमाद तज परमात्मा, परकाश जिन आगम पढ़ैं।

फिर काल लब्धि उद्योत होय, सुहोय यों मन थिर किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।।

अर्थः- जब भोग भुजंग घाव नहीं करेंगे तब मोह की लहरें कैसे चढ़ेगी ? प्रमाद को छोड़कर परमात्म-तत्त्व को प्रकाशित करने वाले जिन आगम को जब हम पढ़ेंगे तब काललब्धि का उद्योत होगा ही होगा। इस प्रकार हमने अपने मन को स्थिर कर लिया है और जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है हमें आप नृप पद क्यों दे रहे हैं!

पांचवाँ कार्तिक-मास

(चौपाई)

कातिक में सुत करैं विहार।

कांटे कांकर चुभैं अपार।

मारैं दुष्ट खैंच के तीर।

फाटे उर थरहरे शरीर।।

अर्थः- हे पुत्रों ! कार्तिक मास में मुनि जब विहार करते हैं तब शरीर में अपार कांटे और कंकर चुभते हैं तथा दुष्ट जन खींचकर तीर मारते हैं तब उससे हृदय तो फट जाता है और सारा शरीर थरथराहट करके कांप उठता है।

(गीता छंद)

थरहरे सगरी देह अपने, हाथ काढ़त नहिं बने ।

नहिं और काहू से कहें तब, देह की थिरता हने ।

कोई खैंच बांधे थम्भ से, कोई खाय आंत निकाल के ।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।।

अर्थः- तीर से जब सारा शरीर थरथराहट करता है तो अपने हाथों से वह तीर निकालते बनता नहीं हैं और अन्य किसी से निकालने को कहते नहीं हैं, तब देह की स्थिरता का हनन हो जाता है और कोई दुष्ट तो खींचकर खम्भे से बांध देता है और कोई आंत निकालकर खा जाता है इसलिए तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

पद-पद पुण्य धरा में चलें।

कांटे पाप सकल दलमलें ।

क्षमा ढाल तल धरें शरीर।

विफल करें दुष्टन के तीर ।।

अर्थः- हम पग-पग पर पुण्य रूपी भूमि पर चलेंगे, पाप रूपी सारे कांटों के समूह को मसल देंगे और क्षमा रूपी । ढाल के तल को शरीर पर धारण करके दुष्ट जनों के तीरों को निष्फल कर देंगे।

(गीता छंद)

कर दुष्ट जन के तीर निष्फल, दया कुंजर पे चढ़े।

तुम संग समता खड्ग लेकर, अष्ट कर्मन से लड़ें।

धनि धन्य यह दिन वार प्रभु! तुम, योग का उद्यम किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया ।।

अर्थः- दुष्टजनों के तीरों को निष्फल करके दया रूपी हाथी पर चढ़ेंगे और आपके साथ समता रूपी खड्ग लेकर आठ कर्मों से लड़ाई करेंगे। हे प्रभु !आज का यह दिन धन्य है और यह वार धन्य है जो आप योग को करने जा रहे हैं, परन्तु जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे है

छठा अगहन-मास

(चौपाई)

अगहन मुनि तटनी तट रहें।

ग्रीषम शैल शिखर दुःख सहें।

पुनि जब आवत पावस काल।

रहें साधु जन वन विकराल।।

अर्थः- अगहन के महीने में (शीत ऋतु में) मुनिराज नदी के तट पर रहते हैं, ग्रीष्म काल में पर्वत के शिखर पर दुःख सहते हैं और फिर जब वर्षा काल आता है तो साधुजन विकराल वन में रहते हैं।

(गीता छंद)

रहें वन विकराल में जहाँ, सिंह स्याल सतावहीं ।

कानों में बीछू बिल करें, और व्याल तन लिपटावहीं ।

दे कष्ट प्रेत पिशाच आन, अंगार पाथर डार के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।।

अर्थः- वे इतने विकराल वन में रहते हैं जहाँ शेर और गीदड़ सताते हैं, कानों में बिच्छू बिल बना लेते हैं, सांप शरीर पर लिपट जाते हैं तथा प्रेत और पिशाच आकर अंगारे और पत्थर बरसाके कष्ट देते हैं इसलिए तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

हे प्रभु! बहुत बार दुःख सहे।

बिना केवली जाय न कहे।

शीत उष्ण नरकन के तात।

करत याद कम्पे सब गात।।

अर्थः- हे प्रभु ! इस संसार में हमने बहुत बार इतने दुःख सहे हैं कि बिना केवली भगवान के वे कहे नहीं जा सकते। हे पिता ! नरकों में जो गर्मी-सर्दी के दुःख हमने सहे उनका स्मरण करते हुए हमारा सारा शरीर कांप रहा है।

(गीता छंद)

गात कम्पे नरक में, लहे शीत उष्ण अथाह ही।

जहाँ लाख योजन लोहपिण्ड सु, होय जल गल जाय ही।

असिपत्र वन के दुःख सहे परबस, स्वबस तप ना किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया।।

अर्थः- नरक में सर्दी के दुःख प्राप्त होने पर शरीर कांपता है और वहाँ इतनी अथाह गर्मी पड़ती है कि एक लाख योजन का लोहे का गोला गल करके जलमय हो जाता है। नरकों में कर्मों के वश पराधीन होकर हमने असिपत्र वन के दुःख भी सहन कर लिये परन्तु आज तक स्ववश होकर तप नहीं किया सो अब जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हैं !

सातवाँ पौष-मास

(चौपाई)

पौष अर्थ अरु लेहु गयंद।

चौरासी लख लख सुखकन्द।

कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु।

लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु।।

अर्थः- पौष का महिना है। हे पुत्रों ! इन धनादि को सुख का पिण्ड जानकर ये सारा धन, चौरासी लाख हाथी तथा अठारह करोड़ घोड़े ले लो और ये एक लाख करोड़ हल चल रहे हैं इनको गिनकर ग्रहण कर लो।

(गीता छंद)

लेहु हल लख कोड़ि षट् खण्ड, भूमि अरु नव निधि बड़ी।

लो देश कोष विभूति हमरी, राशि रतनन की पड़ी।

धर देहूँ सिर पर छत्र तुमरे, नगर घोष उचारि के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।।

अर्थः- इन एक लाख करोड़ हलों को लेकर ये छह खण्ड की भूमि, बड़ी नौ निधियां, सारे देश-कोष की विभूति और रत्नों की सारी राशियों को ग्रहण करो, नगर में घोषणा करवाके मैं तुम्हारे सिर पर छत्र रख देता हूँ, तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

अहो कृपानिधि! तुम परसाद।

भोगे भोग सु बेमरयाद।

अब न भोग की हम कूं चाह।

भोगन में भूले शिव राह ।।

अर्थः- अहो कृपानिधि ! आपके प्रसाद से हमने अमर्यादित भोग भोगे हैं परन्तु अब हमको भोगों की चाह नहीं है। इन भोगों की आसक्ति के कारण ही हम अनादि से मुक्ति की राह भूले हुए थे।

(गीता छंद)

राह भूले मुक्ति की, बहु बार सुर गति संचरे।

जहाँ कल्पवृक्ष सुगन्ध सुन्दर, अप्सरा मन को हरे ।

जो उदधि पी नहिं भया तिरपत, ओस पी कै दिन जिया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ।।

अर्थः- मुक्ति की राह भूलकर हम बहुत बार स्वर्गों में भी गए जहाँ सुगन्धित कल्पवृक्ष थे और सुन्दर अप्सराएं मन को हरती थीं, सो जो समुद्र प्रमाण जल पीकर भी तृप्त नहीं हुआ वह ओस पीकर कितने दिन जीवित रह सकेगा ,अतः जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हैं !

आठवाँ मंगसिर-मास

(चौपाई)

माघ सधै न सुरन तैं सोय।

भोगभूमियन तैं नहिं होय।

हर हरि अरु प्रतिहरि से वीर।

संयम हेत धरें नहिं धीर।।

अर्थः- माघ के महिने में पिता कहते हैं कि 'संयम देवताओं से नहीं सधता, भोगभूमिया जीवों से नहीं हो पाता और रुद्र, नारायण एवं प्रतिनारायण जैसे महान् वीर भी संयम के लिए धैर्य धारण नहीं कर पाते।

(गीता छंद)

संयम कूं धीरज नहिं धरें, नहिं टरें रण में युद्ध सूं।

जो शत्रुगण गजराज कूं, दलमलें पकर विरुद्ध सूं।

पुनि कोटि सिल मुद्गर समानी, देय फैंक उपार के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।।

अर्थः- ये नारायण एवं प्रतिनारायण आदि रणभूमि में तो युद्ध से टलते नहीं हैं, विरूद्ध शत्रुओं के समूह एवं हाथियों को पकड़कर मसल देते हैं और कोटिशिला को मुद्गर के समान उखाड़कर फेंक देते हैं परन्तु संयम के लिए धैर्य धारण नहीं कर पाते तो जब ऐसे महापुरुषों की ही यह कथा है तो तुम जैसों की क्या बात ! अतः तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

बंध योग उद्यम नहिं करें।

एतो तात करम फल भरें।

बांधे पूरव भव गति जिसी।

भुगतें जीव जगत में तिसी।।

अर्थः- कर्म बंध के कारण ही ये नारायण और प्रतिनारायण जैसे महापुरुष योग का उद्यम नहीं करते और हे तात ! कर्म के ही फल को भोगते हैं। पूर्व भव में जीव जैसी गति बांधता है संसार में अगले भव में वैसी ही भोगता है।

(गीता छंद)

जीव भुगतें कर्म फल कहो, कौन विधि संयम धरें।

जिन बंध जैसा बांधियो, तैसा ही सुख दुःख सो भरें।

यों जान सब को बंध में, निर्बंध का उद्यम किया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ।।

अर्थः- जब संसार में जीव कर्मफल को ही भोगते हैं तो फिर कहो ! किस विधि से वे सयंम को धारण कर पाएंगे। | जिसने भी जैसा कर्म का बंधन किया है वैसा ही सुख-दुःख वह भोगता है इस प्रकार सब ही जीवों का बंधमय जानकर आप निर्बन्ध अर्थात् मुक्त होने का उपाय कर रहे हैं सो जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे हैं!

नौवाँ फाल्गुन-मास

(चौपाई)

फाल्गुन चाले सीतल बाय।

थर थर कम्पे सबकी काय।

तब भव बंध विदारणहार।

त्यागें मूढ़ महाव्रत धार।।

अर्थः- फाल्गुन के महिने में शीतल वायु के चलने पर सब जीवों की काया थरथर कांपती है और तब धारण किय हुए संसार के बंध का विदारण करने वाले महाव्रतों को मूर्ख जीव छोड़ देते हैं।

(गीता छंद)

धार परिग्रह व्रत विसारें, अग्नि चहुँदिशि जारहीं।

करें मूढ़ शीत वितीत, दुर्गति गहें हाथ पसारहीं।

सो होंय प्रेत पिशाच भूत रु, ऊत शुम गति टारके।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।।

अर्थ:- वे मूढ़ परिग्रह को धारण करके व्रतों को भूल जाते हैं और चारों दिशाओं में अग्नि को जलाकर शीतकाल को इस प्रकार बिताते हैं मानो हाथ फैलाकर दुर्गति को ही ग्रहण करते हों, सो वे शुभ गति को टालकर प्रेत, पिशाच, भत और ऊत हो जाते हैं इसलिए तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

हे मतिवन्त! कहा तुम कही।

प्रलय पवन की वेदन सही।

धारी मच्छ-कच्छ की काय।

सहे दुःख जलचर परजाय।।

अर्थः- हे मतिवंत ! फाल्गुन मास के शीतल वायु के अल्प दुःखों की यह आपने क्या बात कही, हमने तो प्रलयकालीन पवन की वेदना भी सही है। मगरमच्छ और कछुए आदि की काय धारण करके जलचर पर्याय में हमने दुःख सहे हैं।

(गीता छंद)

पाय पशु परजाय परबस, रहे सींग बंधाय के।

जहाँ रोम रोम शरीर कम्पे, मरे तन तरफाय के।

फिर गेर चाम उचेर स्वान, सियार मिल शोणित पिया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।।

अर्थः- पशु की पर्याय प्राप्त करके हमें कर्मवश सींग बंधवाके रहना पड़ता था, जहाँ शरीर का रोम-रोम कांपता था, तड़फ-तड़फ कर प्राणों का विनाश हो जाता था और फिर शरीर को पृथ्वी पर गिराकर चमड़ी उधेड़कर कुत्ते और सियार मिलकर उसका खून पी जाते थे, इसलिए जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यों दे रहे है।

दसवाँ चैत-मास

(चौपाई)

चैत लता मदनोदय होय।

ऋतु बसन्त में फूले सोय।

तिनकी इष्ट गन्ध के जोर।

जागे काम महाबल फोर।।

अर्थः- चैत के महिने में वसन्त ऋतु में वृक्षों की लताएँ जब फूलती हैं तो उनकी इष्ट गंध के जोर से मदन का उदय होता है और अपने महान बल को स्फुरायमान करके काम जाग जाता है।

(गीता छंद)

फोर बल को काम जागे, लेय मनपुर छीन ही।

फिर ज्ञान परम निधान हरि के, करे तेरा तीन ही।

इत के न उत के तब रहे, गए कुगति दोऊ कर झार के।

कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।।

अर्थः- जीव के बल को फोड़कर अर्थात् नष्ट-भ्रष्ट करके काम जागता है, उसके मनपुर (मन रूपी नगर) को छीनकर उसमें बस जाता है और फिर उसके ज्ञान रूपी परम खजाने को हरके उसका विनाश कर देता है और तब इधर के और उधर के- कहीं के भी नहीं रहकर दोनों हाथ झाड़कर कुगति में चले जाते हैं इसलिए तुम राजनीति के अनुसार राज्य करके अपने कुल की रीति का अनुसरण करो।

(चौपाई)

ऋतु बसन्त वन में नहिं रहें।

भूमि मशान परीषह सहें।

जहाँ नहिं हरितकाय अंकूर।

उड़त निरन्तर अहनिशि धूर।।

अर्थः- वसन्त ऋतु में हम वन में नहीं रहेंगे, हम तो उस श्मशान भूमि में परिषह सहेंगे जहां हरितकाय का अंकुर तक नहीं होता और दिन-रात निरन्तर धूल उड़ती है।

(गीता छंद)

उडे वन की धूरि निशिदिन, लगे कांकर आय के।

सुन शब्द प्रेत प्रचण्ड के वो, काम जाय पलाय के।

मत कहो अब कछु और प्रभु, भव भोग से मन कंपिया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया।।

अर्थः- जब वन की धूल उड़ती है और निशदिन कंकर आकर शरीर पर लगते हैं तो प्रचण्ड प्रेतों के शब्द सुनकर काम भाग जाता है। हे प्रभो ! अब कुछ और मत कहो, संसार के भोगों से हमारा मन कांप चुका है, जो आपकी समझ है सो ही हमारी भी समझ है, हमें आप राज्यपद क्यो दे रहे हैं।

ग्यारहवाँ वैशाख-मास

(चौपाई)

मास बैसाख सुनत अरदास।

चक्री मन उपज्यो विश्वास।

अब बोलन को नाहीं ठौर।

मैं कहूँ और पुत्र कहें और।।

अर्थः- वैशाख का महिना है, पुत्रों की अरदास सुनते-सुनते चक्रवर्ती के मन में विश्वास पैदा हो गया कि अब बोलने को कोई स्थान नहीं बचा है, मैं कुछ और कह रहा हूँ और पुत्र कुछ और ही कहे जा रहे हैं।

(गीता छंद)

और अब कछु मैं कहूँ नहीं, रीति जग की कीजिये।

इक बार हमसे राज लेकर, चाहे जिसको दीजिये।

पोता था एक षट् मास का, अभिषेक कर राजा कियो।

पितु संग सब जगजाल सेती, निकस वन मारग लियो।।

अर्थः- हे पुत्रों ! अब मैं कुछ और नहीं कहूंगा, इस संसार की रीति का पालन करके एक बार हमसे तो राज्य ले लो फिर चाहे तुम किसी को भी दे देना। फिर उन्होंने छह महिने का एक पोता था उसको अभिषेक करके राजा बना दिया और पिता के साथ सब पुत्रों ने जगत के जंजाल से निकलकर वन के मार्ग को ग्रहण किया।

(चौपाई)

उठे वज्रदन्त चक्रेश।

तीस सहस नृप तजि अलवेश।

एक हजार पुत्र बड़भाग।

साठ सहस्त्र सती जग त्याग।।

अर्थः- वज्रदन्त चक्रवर्ती सिंहासन से उठे और उनके साथ अलवेश को छोड़कर तीस हजार राजा, उनके बड़भागी एक हजार पुत्र और साठ हजार रानियों ने भी जगत का त्याग कर दिया।

(गीता छंद)

त्याग जग कूं ये चले सब, भोग तज ममता हरी।

समभाव कर तिहुँ लोक के, जीवों से यों विनती करी।

अहो! जेते जीव जग के, क्षमा हम पर कीजियो।

हम जैन दीक्षा लेत हैं, तुम वैर सब तज दीजियो।।

अर्थः- ममता का विनाश करके भोगों को त्याग कर ये सब संसार को छोड़कर चले और समता भाव का धारण करके तीनो लोकों के जीवों से इस प्रकार विनती की कि 'अहो संसार के समस्त जीवों ! तुम सब हम पर क्षमा करना, हम जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं, तुम हमारे प्रति का सारा वैर छोड़ देना।

(गीता छंद)

वैर सबसे हम तजा, अर्हंत का शरणा लिया।

श्री सिद्ध साधू की शरण, सर्वज्ञ के मत चित दिया।

यों भाष पिहितास्त्रव गुरुन ढिंग, जैन दीक्षा आदरी।

कर लोंच तज के सोच सबने, ध्यान में दृढ़ता धरी ।।

अर्थः- हमने भी सबसे वैर छोड़कर अहँत, सिद्ध और साधु की शरण ली है और भगवान सर्वज्ञ के मत में अपना चित्त लगा लिया है। ऐसा कहकर उन्होंने पिहितास्त्रव गुरु के पास जैन दीक्षा ग्रहण की और केशों का लोंच करके समस्त चिंताओं को छोड़कर ध्यान में दृढ़ता धारण की।

बारहवाँ जेठ-मास

(चौपाई)

जेठ मास लू ताती चले।

सूखे सर कपिगण मद गले।

ग्रीषम काल शिखर के शीस।

धरो आतापन योग मुनीश।।

अर्थः- गरम लूं चलती हैं तब सरोवर सूख जाते हैं और बन्दरों के समूहों का भी मद गल जाता हैं ऐसे पर्वत के शिखर के शीस पर मुनीश पिहितास्रव ने आतापन योग धारण किया।

(गीता छंद)

धर योग आतापन सुगुरु ने, शुक्ल ध्यान लगाइयो।

तिहुँ लोक भानु समान, केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो।

धनि वज्रदन्त मुनीश जग तज, धर्म के सन्मुख भये।

निज काज अरु परकाज करके, समय में शिवपुर गये।।

अर्थः- आतापन योग को धारण करके सुगुरु ने जब शुक्ल ध्यान लगाया तो तीनों लोकों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान केवलज्ञान उनके प्रकट हुआ। वे वज्रदन्त मुनीश धन्य हैं जो संसार को तजकर मुनि के आचारकर्म के सन्मुख हुए और अपने व दूसरों के कल्याण के कार्य को करके समय आने पर मोक्ष को गये।।

(चौपाई)

सम्यक्त्वादि सुगुण आधार।

भये निरंजन निर आकार।

आवागमन तिलांजलि दई।

सब जीवन की शुभ गति भई ।।

अर्थः- सम्यक्त्व आदि सुगुणों के आधार से आवागमन को तिलांजलि देकर वे वज्रदंत मुनीश कर्म रहित और निराकार हो गये और अन्य शेष दीक्षा धारण करने वाले सब जीवों की भी शुभ गति हुई।

(गीता छंद)

भई शुभगति सबन की जिन, शरण जिनपति की लई।

पुरुषार्थ सिद्धि उपाय से, परमार्थ की सिद्धि भई ।

जो पढ़े बारहमास भावन, भाय चित्त हुलसाय के।

तिनके हों मंगल नित नये, अरु विघ्न जांय पलाय के।।

अर्थः- जिन्होंने भी जिनेन्द्र भगवान की शरण ली उन सब ही जीवों की शुभ गति हुई और पुरुषार्थ की सिद्धि के उपाय से उन्हें उत्कृष्ट प्रयोजन मोक्ष की सिद्धि हुई। जो भी जीव इस बारहमासे को पढ़ते हैं और चित्त को उल्लसित करके इसकी भावना भाते हैं उनके नित्य ही नवीन मंगल होते हैं और विघ्न भाग जाते हैं।

(अन्तिम दोहा)

नित-नित नव मंगल बढैं, पढ़ैं जो यह गुणमाल ।

सुर-नर के सुख भोगकर, पावैं मोक्ष रसाल।।

अर्थः- जो जीव यह गुणमाल पढ़ते हैं उनके नित्य प्रति ही नवीन मंगल बढ़ते हैं और देव व मनुष्य पर्याय के सुख भोगकर वे उत्तम मोक्ष को पा लेते हैं।

(अन्तिम सवैया)

दो हजार मांहि ते तिहत्तर घटाय अब,

विक्रम को संवत् विचार के धरत हूँ।

अगहन असित त्रयोदशी मृगांक वार,

अर्द्ध निशा मांहि याहि पूरण करत हूँ।

इति श्री वज्रदन्त चक्रवर्ति को वृतान्त,

रचि के पवित्र नैन आनन्द भरत हूँ।

ज्ञानवन्त करो शुद्ध जान मेरी बाल बुद्धि,

दोष पै न रोष करो पांयन परत हूँ।।

अर्थः- विक्रम संवत् १६२७ के अगहन मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन वार सोमवार की आधी रात्रि में इसे पूर्ण कर रहा हूँ। इस वज्रदन्त चक्रवर्ती के पवित्र वृत्तान्त को रचकर मेरे नेत्रों में आनन्द भर रहा है, ज्ञानीजन मेरी बालबुद्धि जानकर इसे शुद्ध करें और इसमें होने वाले दोषों पर रोष न करें, मैं उनके पैरों में पड़ता हूँ।

Read more at: https://forum.jinswara.com/t/vajradant-baramasa/1906

Stay tuned at: https://t.me/JinSwara